HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

भूमंडलीकरण की दहलीज पर गोंड़ऊ नाच

प्रमोद कुमार पाण्डेय

pkballia8@gmail.com

शोधार्थी, थियेटर विभाग, विश्वभारती, शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल

भारत के अलग-अलग प्रांत में विभिन्न जाति, धर्म और संप्रदाय के लोग निवास करते हैं। जिनकी अलग-अलग संस्कृति के साथ अपनी परंपराएँ जुड़ी हुई हैं, जो सदियों से उनकी पहचान बनी हुई हैं। भारतीय जाति-व्यवस्था में सामंतवाद और जातीय शोषण का विरोधाभास हमेशा से रहा है। खासकर यूपी-बिहार को जाति व्यवस्था का कट्टर नमूना तथा भेदभाव से लैस समाज के रूप में हमेशा से देखा गया है और आज भी भारी मात्रा में उसकी उपस्थिति मौजूद हैं।

इन तमाम सामाजिक कुरीतियों और समाज में चेतना का विस्तार करने का सशक्त माध्यम रंगमंच प्राचीन काल से रहा है। लोक की व्यथा, उसकी अभिव्यक्ति तथा मनोरंजन का खयाल भी विभिन्न लोक शैलियों में व्याप्त रहता है। इसी क्रम में पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में बहुलता के साथ निवास करने वाली गोंड़ जनजाति की लोक शैली गोंड़ऊ नाच लोक रंगमंच की समृद्ध धरोहर है, जिसपर बात बहुत कम होती है। गोंड़ जाति भोजपुरी अंचल में आने वाले क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में निवास करती है।

गोंड़ शब्द की उत्पति के बारे में कुछ विद्वान मानते हैं कि ***कोंडा*** *शब्द से गोंड़ शब्द की उत्पति हुई है।*[1] कोंडा का अर्थ होता है पहाड़ी। किंतु भोजपुरी अंचल में निवास करने वाली गोंड़ जातियाँ मैदानी इलाके के साथ यहाँ की संस्कृति को स्वीकार करती है। प्रकृति पूजा के साथ हिंदू धर्म में आस्था रखती हैं। गोंड़ जाति को अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त है। उत्तर प्रदेश और बिहार के अलावा छत्तीसगढ़, गुजरात,

झारखंड, मध्य-प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, झारखंड आदि जगहों पर भी गोंड़ समाज पाये जाते हैं, किंतु यह सभी साँस्कृतिक रूप में एक दूसरे से भिन्न हैं। कहा जाता है कि तीन कोस में भाषा संस्कृति बदल जाती है उसी प्रकार इनमें भी भिन्नता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश समेत पूरे भोजपुरी भाषी क्षेत्र में निवास करने वाली गोंड़ जाति का कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है। कुछ गोंड़ समाज के प्रबुद्ध वर्ग तथा गोंड़ऊ नाच के वरिष्ठ कलाकार मानते हैं कि भोजपुर अंचल में निवास करने वाली गोंड़ जाति यहाँ के मूल निवासी नहीं थे। यह पलायन के कारण बिहार और उत्तर प्रदेश का हिस्सा बने। इसके बारे में जो साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, वे भी इसी ओर संकेत करते हैं।

गोंड़ जनजातीय समाज जनजातीय लोक नृत्य और नाट्य परंपराओं को भौगोलिक भिन्नताओं के साथ लोक के समक्ष प्रस्तुत करते आया है। हम भारत के किसी भी कोने में नजर डालें जंगल, पहाड़ अथवा मैदानी इलाको में निवास करने वाली गोंड़ जनजातियाँ सभी के पास पारंपरिक लोक रंगमंच की समृद्ध विरासत लोक संस्कृति की धरोहर के रूप में मौजूद हैं। चूँकि भोजपुरी इलाके का गोंड़ऊ नाच बाकी शैलियों से थोड़ा भिन्न इसलिए हो जाता है कि अधिकांश जगह के गोंड़ नृत्य करते हैं तथा नृत्य के द्वारा अभिव्यक्ति तथा भाईचारे का सन्देश देते हैं। किंतु भोजपुरी गोंड़ऊ नाच में नृत्य के साथ निरंतर नाट्य का अभिनय प्रदर्शन चलता रहता है।

बहरहाल हम गोंड़ जनजाति की विभिन्न नृत्य-नाट्य शैलियों में स्थान विशेष का सामाजिक दखल देखते हैं। जैसा कि हिंदी प्रदेश या अन्य भारत के हिस्सों में फैली गोंड़ जनजाति के नृत्य अथवा नाट्य प्रदर्शनों में महिलाओं की सहभागिता देखने को मिलती है, किंतु भोजपुरी इलाके में ऐसा आज भी देखने को नहीं मिलता। भोजपुरी क्षेत्र के गोंड़ऊ नाच में प्राचीन काल से लौंडा नाच की परंपरा रही है, जिसमें पुरुष ही स्त्री का अभिनय करता आया है और आज भी उसी परंपरा के साथ तथा उसी शैली में गोंड़ऊ नाच का प्रदर्शन होते देखा जा सकता है।

गोंड़ जाति में एक आनुष्ठानिक पूजा परंपरा है। कुँवर बाबा का पूजा इसमें एक बकरे को बहुत ही सम्मान के साथ पालते हैं और वह बकरा ही इनके कुँवर बाबा होते हैं। एक शुभ तिथि तय की जाती है, जिस दिन पूरे

आनुष्ठानिक रीति-रिवाज के साथ उस बकरे की बलि दी जाती है। तथा बकरे के मांस का भोज अपने सगे संबंधियों के साथ प्रसाद के रूप में करते हैं।

कुँवर बाबा के इसी पूजन-विधि में नाच-गान की परंपरा रही है। आनुष्ठानिक पक्ष की तरफ ध्यान केंद्रित करते हैं, तो एक पक्ष यह भी लगता है कि गोंड़ऊ नाच परंपरा की शुरुआत इसी आनुष्ठानिक कर्मकांड से हुआ होगा। वैसे कोई सटीक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। कुँवर बाबा का पूजा और बकरे की बलि जैसी परंपरा प्राचीन समय से चली आ रही है। हम यूनानी रंगमंच की तरफ ध्यान केंद्रित करें, तो वहाँ भी नाटकों की शुरुआत इन्हीं आनुष्ठानिक कर्मकांड के द्वारा हुआ और बकरे की बलि की परंपरा तथा बलि के साथ कोरस गीत गाता था, जिसे गोट सॉन्ग कहा गया है। गोंड़ऊ नाच में ऐसी समानताएँ मिलती है। इसके अलावा हुडुका पूजन भी एक हिस्सा है, जिसे गोंड़ समाज शिव का प्रतीक मानता है। गोंड़ऊ नाच के वरिष्ठ कलाकार नंदलाल गोंड़ बताते हैं कि गोंड़ऊ नाच के कलाकार शिव के उपासक हैं तथा सर्वप्रथम इस नाच का मंचन शिव-पार्वती के विवाह में हुआ था। शिव विवाह को मिथकीय मान्यता तथा कुँवर बाबा के पूजन और बकरे की बलि के साथ गीत और नृत्य गोंड़ जाति के लोग करते हैं, जिसे एक आनुष्ठानिक पक्ष के रूप में देखा जा सकता है।

गोंड़ऊ नाच के पास अपनी साहित्यिक विरासत के रूप में भोजपुरी लोक गाथाएँ हैं, जिनका मंचन बिहार के अन्य लोक नाच शैलियों के अलावा गोंड़ऊ नाच में भी होता आ रहा है। भारत की विभिन्न बोलियों तथा भाषाओं में वहाँ की लोक कथा तथा लोक गाथा मिलती हैं, जिनके रचनाकर का नाम ज्ञात नहीं होता। वह निरंतर लोक की कहानियों, देवी-देवताओं राजा-रानी तथा परियों की कहानी के माध्यम से समाज को सत्य की राह पर चलने का संदेश देते रहे हैं।

गोंड़ऊ नाच का मंचन भोजपुरी की लोकगाथाओं के कथानक पर ज़्यादातर देखा जाता है, जिसमें कुँवर विजयमल, राजा भरथरी, अनुसुईया, सती बिहूला आदि के अलावा लोक कथा भाई विरोध आदि प्रस्तुति का हिस्सा रहते हैं।

प्रदर्शन शैली

गोंड़ऊ नाच का आरंभ भक्ति-भजन और सुमिरन के साथ किया जाता है। सुमिरन भोजपुरी लोक भजन की एक प्रकार की लोक शैली है, जिसमें सभी लोक देवताओं को याद किया जाता है। इन देवताओं में ग्राम देवता (डीह बाबा) कुल देवता, ब्रह्म देवता, शिव और गंगा आदि को याद किया जाता है तथा प्रदर्शन के साथ सभी के जीवन को सुखमय बनाने के लिए प्रार्थना किया जाता है। सुमिरन की परंपरा भोजपुरी के अन्य नाच शैलियों में भी देखा जाता है। भिखारी ठाकुर ने भी सुमिरन का प्रयोग अपने लौंडा नाच में किया था तथा इसमें सुमिरन के साथ **लहरा धुन** बजाया जाता है। लहरा धुन दर्शकों और कलाकारों में जोश और ऊर्जा का संचार करता है। गोंड़ऊ नाच में लहरा उस हिसाब से नहीं बजाया जाता, क्योंकि इसमें हारमोनियम आदि वाद्यों का प्रयोग नहीं होता है किंतु हुडुका और झाल से शुरुआती धुन बजाकर दर्शकों में जोश का निर्माण किया जाता है। गोंड़ऊ नाच में सुमिरन की शुरूआत एक दोहा से होती है, जो इस प्रकार है-

पहले गुरु को गाइये जिन गुरु रचत जहान
पानी से गुरु पिंड रचे अलख पुरुख निर्माण

इस दोहा के साथ इस नाच प्रस्तुति की शुरुआत होती है, जिसमें गुरु को प्रमुख स्थान प्राप्त है। यह दोहा कबीर के दोहा गुरु गोविंद दोऊ खड़े के समान गुरु को प्रथम और सबसे विशिष्ट स्थान देता है। बहरहाल कबीर को भोजपुरी लोक संस्कृति के कदम-कदम पर पाते हैं, चाहें वह निर्गुण हो अथवा भोजपुरी कि अन्य शैली हमें कबीर हर जगह मिलते हैं।

नाच के शुरुआत में भक्ति-भजन के साथ करना शुभ माना गया है तथा लोक आस्था को समेटे नाच मंडली शुरुआत में ईश्वर को याद करते हुए प्रदर्शन में सिद्धि व सफलता पाने तथा लोक एवं समाज के कल्याण हेतु प्रार्थना करती है। जिसमें एक मंडली द्वारा इस प्रकार से भजन की शुरुआत होती है।

का गती होईहें हमारी ए प्रभु जी का गती होईहें हमारी
विपत्ति के मरले नोकरिया करे गइनी नोकरी करत ओ घरी
जहाँ-जहाँ गइनी सरणियों ना पवनी उहाँ लागेला मो के चोरी

ए प्रभु जी का गती होईहें हमारी ए प्रभु जी का गती होईहें हमारी
चादर हरनी पागर हरनी औरी हरनी जामा छोरी
औरी पोशाक कहाँ ले बरनी तुरी लेहले डांड़वा के डोरी
ए प्रभु जी का गती होईहें हमारी ए प्रभु जी का गती होइहें हमारी

यह एक गीत है, जो सुमिरन के दौरान ईश्वर को याद करते हुए मंडली द्वारा गाया जाता है, जिसमें भक्त ईश्वर को अपनी व्यथा सुनाता है। लोक और समाज में जनता जिस समस्या से जूझ रही होती हैं उसका वर्णन तथा ईश्वर से कल्याण की कामना का सुमिरन सुनने को मिलता है।

इसी क्रम में सुमिरन के दौरान ईश्वर को याद करते हुए मंडली द्वारा भजन गीत में यह भजन गीत भी प्राय: देखा-सुना जाता है-

सरण में राखि लीं भगवान सरण में राखि लीं भगवान
निचवा से उड़ी पंछी आम गांछी बइठे बारह बजे हरी राम
निचवा से वैदा बान सराहे उपरा से बाझ मेड़राए
सरण में राख़ लीं भगवान राख़ लीं भगवान सरण में राख़ लीं भगवान

गोंड़ऊ नाच में भजन के साथ देवी पचरा गीत गाने तथा उस गीत पर अभिनय की प्रस्तुतियाँ भी होती रही है। लोक में हमेशा से देखा गया है कि देवी की पूजा-अर्चना करना तथा किसी व्यक्ति के शरीर पर देवी का आना हमेशा से लोक आस्था का विषय रहा है। पचरा के दौरान भोजपुरी पचरा गीत **निमिया के डांढि मईया लगावेलु हिलोरवा की झूमी-झूमी ना** आदि पचरा गीतों का प्रदर्शन होता है और उसमें लौंडा का किरदार कर रहे एक कलाकार के ऊपर देवी का आना आदि प्रदर्शन देखने को मिलता है। लौंडा द्वारा भवानी माई के पचरा और शिवजी के गीत से नृत्य शुरू होता है। फिर धीरे-धीरे समाजी और जोकर के साथ लौंडा समा बांध देते हैं। **"की आहों रामा सुतले में पियावा खटिया खींचेला हे राम"** जैसे गीत हुड़ुका और झाल पर दर्शकों को झूमा देते हैं।

गोंड़ऊ के लौंडा की नृत्य शैली उत्तेजक होती है। उछल कूद करते हुए मंच के चारो तरफ चक्कर लगाते हुए देशी अंदाज में कमर लचकाते नृत्य करते हैं। समाजी (वाद्य कलाकारों) के साथ गीत भी गाते रहते हैं।

गोंड़ऊ नाच शैली की सबसे खास बात है कि सिर्फ लौंडा नही, बल्कि बीच-बीच में लौंडा के साथ मंडली में से निकलकर तथा दर्शकों में से निकलकर भी कलाकार लौंडा के साथ अभिनय तथा नृत्य करने लगते हैं।

गोंड़ऊ नाच में जोकर की प्रमुख भूमिका होती है। जोकर जैसे संस्कृत रंगमंच में विदूषक होता है, वैसे ही गोंड़ऊ नाच में जोकर की भूमिका होती है। जोकर का काम पूरी प्रस्तुति में हास्य उत्पन्न करना होता है। वह लौंडा के साथ किसी वाद्य कलाकार के साथ मस्ती करता रहता है। खासकर पूरी प्रस्तुति में लौंडा को छेड़ता रहता है। जोकर गाँव के मुखिया जमींदार पर व्यंग भी बोल देता है तथा अपनी अभिव्यक्ति के विस्तार में द्विअर्थी शब्दों और गालियों का प्रयोग करता रहता है। इसके साथ अपने आंगिक अभिनय के साथ खुद को पागल मूर्ख की भाँति प्रस्तुत करता है तथा हँसा-हँसा कर दर्शकों को लोट-पोट कर देता है।

जोकर पहले खुद को गाली देकर अपने साथी कलाकारों को गाली देकर खुद को बेशर्म और निर्लज साबित करता है। उसके बाद वहाँ उपस्थित लोगों पर कटाक्ष करता है, अपमानित करता है। उस समय वहाँ उपस्थित गाँव के मुखियाँ हो या पूज्य ब्राह्मण, जोकर किसी को भी नहीं छोड़ता। जोकर इस दौरान रंगमंच के अभिव्यक्ति का पूर्णतः प्रयोग करता है।

जोकर अपनी सारी मन की भड़ास निकालता है, क्योंकि मंच के बाहर उसे जमींदार और मुखिया के सामने आँख मिलाने की भी इजाजत नहीं है। लोक विद्वान वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी ने लिखा है कि शोषित, दलित, वंचित, जनता के अभिव्यक्ति का माध्यम रंगमंच होता है। रंगमंच सिर्फ इनके मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि अपनी बात उन कानों तक पहुँचाने की होती है, जो इनकी समस्यों को सुनना नहीं चाहती हैं। जोकर अपनी वाणी और संवाद को निरंतर हास्य से सराबोर किया रहता है तथा लोक तथा पुराण के श्लोक कहावतों को तोड़–मड़ोर कर प्रस्तुत करता है। जैसे एक प्रदर्शन में जोकर कहता है –

चिंता से चमार घटे.. दुःख से घटे दुसाध
पाप से पासी घटे ..कह गये मुसहर राज
सदा भवाने पकौड़ी जल मुख रहा पलेट
पाँच जन मिलके हमके दीहें पान बीड़ी सिगरेट।

यहाँ पर जोकर ने चिंता से चतुराई घटे दोहे को अपने अंदाज और अभिनय कौशल के साथ शब्दों में हेर-फेर करते हुए दर्शकों को आनंदित कर देता है। वहीं एक गोंड़ऊ नाच के नाटक "बाह बकरी बाह" में जोकर अपनी बकरी की ह्त्या का शिकायत मुखिया के पास लेकर जाता है और कहता है मुखिया जी हमारे बकरी के साथ न्याय करिये मैंने आपका बहुत काम किया है। गाँव के उस पार आपने ही डकैती कराई थी न? मुझे पता है। लेकिन मैंने किसी को नही बताया मुखिया उसे चुप रहने को कहता है और उसके साथ इंसाफ करने का भरोसा देता है। यह सारा प्रदर्शन व्यंग के रूप में होता है और दर्शक दीर्घा में हँसी के फव्वारे छूटते रहते हैं।

इसी तरह से जोकर पूरी प्रस्तुति में दर्शकों के साथ भी मस्ती करते रहता है तथा गोंड़ऊ नाच में एक खास किस्म का हस्त सामग्री जिसे भोजपुरी में झरनाठ कहा जाता है। उससे दर्शक तथा साथी कलाकारों को ठोकता रहता है। इसमें कई बार जोकर की भाव-भंगिमा एवं आंगिक अभिनय में निर्लजता के कारण अश्लील भी हो जाती है।

गोंड़ऊ नाच में समाजी (कोरस) की सक्रिय भूमिका होती है। इसमें कोरस का काम वही करते हैं, जो झाल मजीरा आदि वाद्य बजाते हैं। एक कलाकार आगे-आगे गीत गाकर अभिनय करता है, पीछे से कोरस की भूमिका वाद्य कलाकारों द्वारा प्रस्तुत होता है। प्रस्तुति के दौरान कोरस के बीच से कोई कलाकार मंच पर आकर लौंडा के साथ नृत्य तथा अभिनय करने लगता है। यह सभी कलाकार मंच पर एक दम सामान्य स्थिति में रहते हैं। आपस में बात करना चुनौटी निकालकर खैनी बनाना दर्शकों से संवाद आदि सब कुछ नाट्य मंचन के साथ ही चलता रहता है। वहीं पीछे से कॉमिक पंच मारते रहते हैं। कोरस का काम मंडली के वाद्य कलाकार ही करते हैं। जिनके हाथों में झाल- मजीरा और गोंड़ऊ नाच का मुख्य वाद्य हुडुका रहता है। हुडुका गोंड़ऊ नाच की पहचान है, जो गोंड़ऊ नाच को रंगमंच शैली में एक अलग पहचान देती है। बहुत जगह गोंड़ऊ नाच को हुडुका नाच भी कहा जाता है। हुडुका को गोंड़ जाति का प्रतीक वाद्य भी कहा जा सकता है। इसके साथ इस समुदाय की पहचान जुड़ी हुई है तथा इस वाद्य के प्रति इस समाज के लोगों के भीतर श्रद्धा जुड़ी होती है। भुवनेश्वर भास्कर अपनी पुस्तक भोजपुरी लोक संस्कृति एवं परंपराएँ में हुडुका पूजन की परंपरा के बारे में लिखते हैं – "हुडुका वाद्य का गोंड़ जाति के भीतर बहुत ही सम्मानित दर्जा प्राप्त

है। गोंड़ जाति में हुडुका का पूजा किया जाता है मान्यता है कि हुडुका पूजन वंश प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस पूजन विधि के दौरान एक गीत गया जाता है।

कहवां ए हुडुका तोहरो जनमिया
कहावां में लेला पैसार, ए हुडुका
गोड़वे के घरवा हुडुका तोहरो जनमिया
गोड़वे के घरे लेला पैसार, ए हुडुका
काहें खातिर गोंड़वा हुडुका तोहरे के पूजेले
काहें खातिर पूजे ओकर कुल-खानदान
बेटवे कारण भइले हमरो जनमिया
बेटवे खातिर पूजे कुल खानदान।

गोंड़ जाति के टोटरम और मन्नत से हुडुका पूजन की परंपरा शुरू हुई होगी। जैसा कि गीत के अंतिम पंक्ति में हुडुका कहता है कि पुत्र की खातिर मेरा जन्म हुआ है, जिसके चलते गोंड़ जाति के कुल-खानदान मेरी पूजा-अर्चना करते हैं।

हुडुका गोंड़ जाति के संस्कार संस्कृति से जुड़ा हुआ है यह नाट्य प्रस्तुति में एक चरित्र की भूमिका का निर्वहन करता है। हुडुका वादक प्रस्तुति के दौरान समाजी से बाहर निकलकर महिला चरित्र के साथ अभिनय तथा तरह-तरह की भाव भंगिमाओं के साथ अभिनय और नृत्य करता है। इसमें उसका पूरा सहयोग हुडुका के ध्वनि से मिलता है। यहाँ तक कि हुडुका के बड़े साधक कलाकार हुडुका से संवाद भी निकालते हैं और अपने सहयोगी अभिनेता के संवाद का जवाब हुडुका बजा के उसके ध्वनि से देते हैं। हुडुका की बनावट डोलक नुमा होती है, किंतु आकार में ढोलक से बहुत छोटा और डमरू से बड़ा होता है। हुडुका वादक हुडुका को अपने एक बाजू के नीचे दबाकर द्सरे बाजू की हथेली से बजाते हुए विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकालते हैं, जिसपर दर्शक और कलाकार झूम उठने पर मजबूर हो जाते हैं।

आज के समय में हुडुका बहुत कम देखने को मिलता है। एक समय था, जब गोंड़ समाज के घर-घर में या उनके मुहल्ले में काफी मात्रा में उपलबद्ध रहता था, किंतु अभी बहुत कम उपलब्ध हो पाता है। जिस प्रकार

हमारे लोक संस्कृति की धरोहर रही वाद्य यंत्र विलुप्त हो रही हैं, उसी प्रकार हुडुका का भी हाल होते जा रहा है।

साक्षात्कार के दौरान ग्राम चौबेछपरा-छेड़ी जिला बलिया निवासी गोंड़ऊ नाच के वरिष्ठ कलाकार तथा हुडुका वादक नंदलाल गोंड़ बताते हैं कि हुडुका का गोंड़ समाज में एक ईश्वर कि भाँति सम्मानित दर्जा प्राप्त है। पूर्वाञ्चल के विभिन्न हिस्सों में विवाह संस्कार के दौरान मानर पूजने की परंपरा है, जिसमें अन्य समाज के लोग हरिजन समाज के चमड़े की डफली को पूजते हैं, जबकि गोंड़ समाज में हुडुका का पूजन होता है। नंदलाल गोंड़ के अनुसार हुडुका का बनावट डमरू के समान होता है। शिवजी का वाद्य डमरू है और गोंड़ समाज के मान्यतानुसार गोंड़ऊ नाच का प्रथम मंचन शिवजी के विवाह में हुआ था। हुडुका का संबंध पुत्र-प्राप्ति के अलावा शिव-विवाह तथा शिव के डमरू से मिली जुली मान्यताएँ गोंड़ समाज में व्याप्त है। हुडुका गोंड़ऊ नाच के आलावा दुनिया में विख्यात लोक संस्कृति जौनसार बावर जनजातीय लोक नृत्य में भी प्रमुख वाद्य के रूप में प्रयोग होता आया है।

दिनांक 13 दिसंबर 2013 के दैनिक जागरण चकराता उत्तराखंड में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक जौनसार बावर से हुडुका का चलन दिन-प्रतिदिन कम होते जा रहा है। आवश्यकता है ऐसे लोक-वाद्यों का संरक्षण करने हेतु प्रयास किया जाये, ताकि भविष्य में शोध कार्य के साथ-साथ अध्ययन अध्यापन में सहयोग प्राप्त हो सके तथा पीढ़ियों तक इसकी जानकारी प्रेषित करने में सहूलियत रहे। आज भी भोजपुरी भाषी गोंड़ जनजातीय समाज से गोंड़ऊ नाच का चलन भले ही कम होते जा रहा है, लेकिन जब तक वैवाहिक कार्यक्रम लोक परंपरा के हिसाब से हो रहे हैं, तब तक हुडुका इस समाज के पास देखा जाता रहेगा।

गोंड़ऊ नाच में दूसरा प्रयोग होने वाला मुख्य वाद्य झाल है। इसे भोजपुरी में झाल बोलते हैं, बाकी जगह इसे मजीरा भी कहा जाता है। गोंड़ऊ नाच में समाजी से अधिकांश कलाकार झाल बजाते हैं अर्थात् मंडली का एक मुख्य वादक हुडुका बजाता है, बाकी के तीन-चार या इससे अधिक कलाकार झाल बजाते हैं। गोंड़ऊ नाच में प्रयोग होने वाले झाल काफी बड़े और वजनदार होते हैं। गोंड़ऊ नाच के कलाकार बताते हैं कि इस नाच में प्रयोग होने वाले झाल में एक झाल में एक किलो ग्राम से भी अधिक वजन होता है, जिसे कलाकार

झूम-झूम कर तथा नाचते हुए बजाते हैं। इससे हम अंदाजा लगा सकते हैं कि झाल बजाने के लिए कलकारों के पास कितनी ऊर्जा की जरूरत पड़ती होगी।

गोंड़ऊ नाच के अभिनय प्रस्तुति के दौरान दृश्यबंध अमूमन देखने को नहीं मिलता, बल्कि माहौल के हिसाब से तथा दर्शकों की रुचि को भाँपते हुए नाट्य आगे बढ़ता रहता है और अभिनेता लोक तथा समाज से तथ्यों को उठाकर संवाद के विषय वस्तु के रूप में प्रयोग करते हैं। भारत में खासकर लोक नाटकों की प्रस्तुतियों के संबंध में बात की जाए तो इसमें दृश्यबंध अभिनय तथा प्रकाश व्यवस्था कमतर देखने को मिलती है। उसी प्रकार गोंड़ऊ नाच में कुछ ऐसा ही संयोजन देखने को मिलता है।

गोंड़ऊ नाच के प्रदर्शन के दौरान अभिनेताओं द्वारा ढेबरी का प्रयोग किया जाता है। ढेबरी का प्रयोग ग्रामीण अंचल में हर घर में होता था, इसमें किसी खाली शीशी- बोतल में बत्ती लगाकर बनाया जाता था, जिसे केरोसिन तेल के द्वारा जलाया जाता और प्रकाश किया जाता रहा है। पूर्व समय में गोंड़ऊ नाच के मुख्य प्रकाश का स्रोत ढेबरी हुआ करता था। इसके द्वारा प्रकाश भी किया जाता तथा नाट्य प्रॉपर्टी के रूप में अभिनेता भी इसका प्रयोग करते थे, जिसे आज भी गोंड़ऊ नाच में देखा जा सकता है। ग्रामीण समाज में खासकर बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में ढेबरी का प्रयोग हाल के समय तक होता रहा है। गोंड़ऊ नाच में ढेबरी ने धीरे-धीरे नाटक की मूल सामग्री का रूप लिया तथा नाट्य प्रदर्शन में इसका प्रयोग हास्य उत्पन्न करने हेतु किया जाने लगा। ढेबरी के साथ अभिनेता करतब दिखाने लगे साथी कलाकार के कृत्रिम पूँछ में आग लगाकर हास्य उत्पन्न करने के लिए भी इस उपकरण का प्रयोग किया जाता है। ढेबरी का लव पूरी प्रस्तुति में जलता रहता है। ध्यान रहे कि इन प्रस्तुति में सामान्य ढेबरी से बड़ी लौ इसमें जलाया जाता है, ताकि प्रदर्शन के दौरान या खुले मैदान में होने वाली प्रस्तुति के मध्य हवा से यह बुझे न। इसका प्रयोग आज भी ग्रामीण प्रस्तुति में देखा जा सकता है।

भूमंडलीकरण के बीच गोंड़ऊ नाच

कभी गली चौराहों तथा खेत-खलिहान, खुले आकास के नीचे प्रदर्शन होने वाला गोंड़ऊ नाच सभागार में पहुँच चुका है तथा प्रोसेनियम मंच पर इसका प्रदर्शन देखा जा रहा है। सुनने में अच्छा लगता है कि जो

कला विलुप्त हो रही थी, उसे कम-से कम कुछ रंगकर्मी और कला-प्रेमी के प्रयास से प्रतिष्ठित आधुनिक मंच प्रदान हो रहे हैं। किंतु प्रश्न यह भी उठता है कि क्या हम उसके मौलिक शिल्प के साथ न्याय कर पा रहे हैं? दर्शक और कलाकार को जोड़कर रखने की प्रथा गोंड़ऊ नाच में रही है, जिसे बंद प्रेक्षागृह में नही देखा जा सकता है। कलाकार मंच पर तमाम नियमों और अनुशासन से बँधा रहता है। गोंड़ऊ नाच का मूल स्थान खुले आसमान के नीचे एक भरा मैदान होता रहा है, जिसमें अभिनेता खुलकर अभिनय करता आ रहा है तथा दर्शकों के बीच भी चला जाता था, जो बंद प्रेक्षागृह में संभव नही है।

गोंड़ऊ नाच की मूल शैली में दर्शक-अभिनेता संवाद और दर्शकों के बीच लौंडा का चला जाना और मज़ाक मस्ती करके इनाम के रूप में कुछ पैसे लेकर आते हैं। यह सब कुछ जब गोंड़ऊ नाच को बड़े मंचो पर देखते हैं, तो यह उसमें कहीं न कहीं गुम हो जाता है। भारत में अनेक प्रांत की लोक शैलियों का मूल स्थान खुला मंच ही होता था, वैसे ही गोंड़ऊ नाच भी उसी के हिसाब से बना है। जब प्रोसेनियम में इस नाट्य शैली को देखते हैं, तो बड़ी-बड़ी आधुनिक लाइटों के बीच अभिनेताओं को बँधा महसूस पाएंगे, जिसमें इनके द्वारा प्रस्तुति की रोचकता जितनी चाहिए उतनी नहीं मिल पाती है।

गोंड़ऊ नाच जैसी लोक शैलियाँ भले ही आज अस्तित्व के लिए जूझ रही हों, किंतु इनके सामग्रियों और लोक धुन के सहारे अनेक आधुनिक व्यावसायिक गीत तैयार किए जा रहें हैं, जिनमें मौलिकता का सर्वथा अभाव होता है। भोजपुरी के एल्बम गायकों ने इन गोंड़ऊ नाच के मूल गीतों को स्टूडियों में आधुनिक यंत्र के साथ रिकार्ड करते गये तथा उसके माध्यम से आय भी कर रहे हैं। जबकि गोंड़ऊ नाच के मूल कलाकार आज भी मेहनत-मजदूरी करके दो जून की रोटी बहुत परिश्रम के साथ जुगाड़ कर पाते हैं। आज बाजारवादी व्यवस्था ने इतना कब्जा कर रखा है कि खुद उस समाज की युवा पीढ़ी भी अपनी लोक शैलियों को अपनाने से कतरा रही है। अपनाना तो दूर उसे अपने कार्यक्रमों का हिस्सा तक नहीं बनाना चाह रही है, जो कहीं न कहीं लोक-संस्कृति के अस्तित्व पर भयानक खतरा माना जा सकता है। भूमंडलीकरण ने बाजार का बृहद रूप स्थापित किया, जिसकी वजह से लोक-कला आधुनिक शैली में पूरी दुनिया तक पहुँच बना रही है, किंतु उसका मौलिक स्वरूप आधुनिकता के सामने सिकुड़ रही है। गोंड़ऊ नाच बाजारवादी दौर में साल में कुछ एक सरकारी कार्यक्रमों का हिस्सा बनकर रह गया है और यही हाल गोंड़ऊ नाच के साथ

कमोबेस अन्य लोक रंगमंच शैलियों के साथ भी है। इस दौर में लोक कलाकार मेहनत-मजदूरी करके साल भर अपना भरण-पोषण करते हैं और जब किसी सरकारी कार्यक्रम या किसी लोक-रंग महोत्सव में जरूरत पड़ती है, तब उन्हें देश के अलग–अलग हिस्सों से ढूंढकर कार्यक्रम के लिए आमंत्रित किया जाता है। कार्यक्रम के बाद साल भर उन कलाकारों की कोई हाल-खबर लेने वाला नहीं होता। इसलिए लोक कलाकारों का भी मंचन से मन खिन्न हो गया है। मेरी बात जब बलिया के बिनहा ग्राम निवासी दिनेश गोंड़ से हुई, तो यह उन्होने ने भी बताया कि "पिछले पचास वर्ष से मैं गोंड़ऊ नाच कर रहा हूँ, किंतु कभी ऐसा महसूस नहीं हो पाया कि इस नाच के भरोसे मैं अपना जीवन यापन कर पाऊँगा। यदि लगान पर खेत लेकर खेती न करें, मेहनत मजदूरी ना करें, तो दो वक्त की रोटी जूटा पाना मुश्किल है। वर्तमान में तो और बुरा हाल हो गया है अँग्रेजी नाच और प्रोग्राम के कारण हमें नाच का प्रोग्राम मिलना भी बंद हो गया है। बच्चे मना करते हैं कि आप नाच छोड़ दीजिये, हमें शर्म आती है। अब तो गोंड़ समाज के बच्चे खुद अपने कार्यक्रम का हिस्सा अपनी पारंपरिक लोक शैली को गोंड़ऊ नाच को बनाना नहीं चाह रहे हैं, तो सोच लीजिये इस दौर में हमारी क्या स्थिति है।"

दिनेश गोंड़ की इस बात में चिंता है और साथ में एक कलाकार का दुःख भी शामिल है। भूमंडलीकरण के इस मायाजाल में बाजार ने इस कदर से अपना अधिकार जमा रखा है कि इन विधाओं का रास्ता लगभग बंद हो चुका है। इनमें जान फूंकने की कवायत हो रही है, किंतु इसमें मौलिकता का खयाल कम रखा जा रहा है। शायद बाजार के सामने गोंड़ऊ नाच को खड़ा रखने की कोशिश हो सकती है, लेकिन उसके मूल स्वरूप से अलग करना भी तो एक तरह से मूल शिल्प-शैली को नष्ट-भ्रष्ट करना ही माना जाएगा।

इस बात को स्वीकार करने में कोई परहेज नहीं है कि भूमंडलीकरण के दौर में बाजारवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति ने अन्य लोक विधाओं के साथ गोंड़ऊ नाच को भी उसके जड़ से हिला दिया है। भोजपुरी भाषी समाज में गोंड़ऊ नाच जातिगत भेदभाव से उबर नहीं पाया। उससे पहले ही उसपर बाजारवाद एक नई चुनौती बनकर चट्टान जैसे सामने खड़ा हो गया। रिकॉर्डिंग डांस का दौर शुरू हो गया, लोग शादियों में फिल्मी गाने पर नृत्य करने वाली आधुनिक और महंगी महिला कलाकारों को पसंद करने लगे और गोंड़ऊ नाच, जिसमें लोक नृत्य, लौंडा नाच के साथ नाटक होता था, उसे अश्लील कहकर नकारते

गए। भले ही इन आधुनिक भोजपुरी गीतों और उसपर नृत्य में फैली अश्लीलता कूट-कूटकर भरी हो, लेकिन इसमें समाज को मनोरंजन दिखने लगा। इसे समय का प्रवाह कहें या भूमंडलीकरण युग का जादुई करिश्मा इन सब के बीच कहीं न कहीं यह बाजार की ताकत और लोक-संस्कृति के प्रति समाज का मोह भंग दर्शाता है।

निष्कर्ष

लोक संस्कृति से जुड़ी बहुत-सी विधाएँ आज आधुनिकता और भूमंडलीकरण के दौर में मुख्यधारा से दूर होती जा रही हैं। जिस क्षेत्र का समाज अपनी परंपराओं के प्रति जागरूक हुआ है, उनकी साँस्कृतिक विरासत का हाल तो कुछ बेहतर स्थिति में हैं, लेकिन जिस समाज को उसकी परवाह नहीं अथवा उसमें रुचि रखने वालों की संख्या कम है, उनकी साँस्कृतिक विरासत अपने अस्तित्व से संघर्ष कर रही है। भोजपुरी भाषी क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन साँस्कृतिक चेतना की कमी नई पीढ़ी में देखी गई है, जिसका खामियाजा यह हुआ है कि इस क्षेत्र से जुड़ी लोक पारंपरिक विधाएँ लगभग लुप्त होने के कागार पर हैं। आधुनिक माध्यम तथा इस क्षेत्र से लगातार पलायन के कारण बाहरी संस्कृतियों का इस क्षेत्र में प्रभाव बढ़ गया तथा यहाँ की मूल विधाएँ सिकुड़ती चली गयी। इन सब के बीच भोजपुरी भाषी गोंड़ जनजाति की लोक रंगमंच शैली गोंड़ऊ नाच का हाल भी कुछ ऐसा हुआ। एक समय ग्रामीण अंचल में अपने नाट्य और लौंडा नृत्य के प्रदर्शन से सारी रात मनोरंजन करने वाली विधा आज लगभग विलुप्त होने के कगार पर खड़ी है। एक तरफ समाज का बड़ा तबका मनोरंजन से भरपूर बताता है, लेकिन साथ में अश्लीलता और फूहड़पन का आरोप लगाकर इसे सामाजिक तौर पर नकार भी देता है। किंतु इस शैली को मिथक और आनुष्ठानिक पक्ष और लोक मान्यताओं की दृष्टि से समझने की जरूरत है।

गोंड़ऊ नाच की पहचान तथा उसका ढाँचा भगवान शिव से प्रभावित है तथा इस शैली के कलाकार शिव को अपना आराध्य मानते हैं। इसके कलाकार यह मानते हैं कि जिस प्रकार शिवजी निराले अंदाज में रहते हैं उनका वस्त्र मृग छाल होता है और वे अर्ध नग्न मुद्रा में तपस्या में विलीन रहते हैं उसी प्रकार हम भी गोंड़ऊ नाच में अपनी बात बिना ढकें तथा घूमा-घूमा के प्रस्तुत करने में विश्वास नहीं रखते, बल्कि खुल कर दर्शक के सामने अपनी बात रखने में इस शैली के कलाकार विश्वास रखते हैं। यही कारण है कि समाज में

यदि गाली का प्रयोग हो रहा है, तो गोंड़ऊ नाच के कलाकार भी दृश्य की माँग पर गाली का प्रयोग करते हैं। भूमंडलीकरण के तमाम प्रभाव के बीच भी कुछ लोक कलाकार तथा रंगमंच से जुड़े लोग इस शैली में जान फूंकने का प्रयास कर रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले लोक-रंग उत्सव का हिस्सा बनाने का प्रयास कर रहे हैं। दिल्ली, पटना, भोपाल, देवरिया, बनारस आदि स्थानों पर विभिन्न लोक उत्सव में गोंड़ऊ नाच का मंचन देखा जा रहा है। बड़े महानगरों में इसकी प्रस्तुति बंद प्रेक्षागृह में आधुनिक लाइट के बीच हो रहा है। चूँकि बंद प्रेक्षागृह और आधुनिक प्रकाश व्यवस्था के बीच गोंड़ऊ नाच का मूल शिल्प भटक रहा है। कारण है कि यह खुले आसमान के तथा दर्शकों से संबंध स्थापित करते हुए गोंड़ऊ नाच प्रस्तुत किया जाता है, जबकि बड़े महानगरों में बंद प्रेक्षागृह जैसे प्रोसेनियम मंच पर यह संभव नहीं हो पा रहा है। स्थिति बहुत बेहतर नहीं होने के बावजूद यह कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर में इस नाच विधा को जीवित रखने तथा लोक उत्सव का हिस्सा बनाने के लिए कुछ आधुनिक बदलाव हो रहे हैं।

आधार ग्रंथ

1. केशरी, अर्जुनदास व बाबुलकर, मोहनलाल. (1998). *मध्यांतर भारत के लोक नाट्य-नृत्य.* सोनभद्र. लोकवार्ता शोध संस्थान.
2. शर्मा, राजीवलोचन. (1969) *जनजातीय जीवन और संस्कृति.* कानपुर. सहचारी प्रकाशन प्रसारण.
3. सिन्हा, सत्यव्रत (2015) *भोजपुरी लोकगाथा.* इलाहाबाद. हिंदुस्तानी एकेडमी.
4. भास्कर, भूनेश्वर. (2016) *भोजपुरी लोक संस्कृति और परंपराएँ,* नई दिल्ली. प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार.
5. उपाध्याय, कृष्णदेव- *लोक संस्कृति की रूपरेखा* (सं.2009). इलाहाबाद. लोक भारती प्रकाशन.
6. त्रिपाठी, वशिष्ठ नारायण. (सं.2001) *भारतीय लोक नाट्य.* दिल्ली वाणी प्रकाशन.
7. दैनिक जागरण चकराता उत्तराखंड, 13/12/2013
8. प्रसाद, दुर्गा. (21/08/2014) बलिया. अमर उजाला हिंदी अखबार.
9. गोंड़ समाज का इतिहास, रंजीत भारतीय, jankaritoday.com 13/01/2022

[1] **गोंड समाज का इतिहास, रंजीत भारतीय, jankaritoday.com** as on 13/01/2022

Citation: पाण्डेय, प्रमोद कुमार (2023). भूमंडलीकरण की दहलीज पर गोंड़ऊ नाच, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 14 (8), 44-58 . URL: https://hinditech.in/bhumandalkaran-ki-dahlij-par-gondu-nach/